
प्रवचन-१५०, श्लोक-२१६-२१७, गाथा-१३१-१३२,
मंगलवार, ज्येष्ठ कृष्ण १३, दिनांक १०-०६-१९८०

नियमसार २१६ (कलश)

स्वतः-सिद्धं ज्ञानं दुरघ-सुकृतारण्य-दहनं,
महामोहध्वान्तप्रबलतरतेजोमयमिदम् ।
विनिर्मुक्तेर्मूलं निरुपाधि-महानन्द-सुखदं,
यजाम्येतन्नित्यं भवपरिभवध्वन्सनिपुणम् ॥२१६॥

* निरुपाधि=छलरहित; सच्चे; वास्तविक ।

श्लोकार्थ : आहाहा ! यह स्वतःसिद्ध ज्ञान... भगवान आत्मा का स्वरूप ज्ञानप्रधान, वह स्वयंसिद्ध है। किसी से हुआ नहीं और किसी से नया हुआ नहीं—सादि हुआ नहीं; अनादि-अनन्त स्वतःसिद्ध। उसका स्वरूप ही अनादि-अनन्त स्वतः सिद्ध ज्ञान है। आहाहा ! वह ज्ञान पाप-पुण्यरूपी वन को... आहाहा ! ज्ञानस्वभाव भगवान में अन्तर्मुख होने से, बहिर्मुख से उत्पन्न हुए पुण्य-पाप के भाव को वह जलानेवाली अग्नि है,... आहाहा ! पाप-पुण्यरूपी वन को जलानेवाली अग्नि है,... आहाहा ! समझाना है। बाकी तो आत्मा ज्ञानस्वरूप है। अन्दर जाए और स्थिर होता है, इसलिए पुण्य-पाप उत्पन्न नहीं होते, उसे यहाँ जलानेवाली अग्नि कहा जाता है। आहाहा ! कर्तव्य तो यह है, करना होवे तो यह है; बाकी मनुष्य के भव को अफल करना हो तो यह है। अफल अर्थात् भव न करना हो तो। अनादि से सफल भव करता है। आहाहा !

प्रवचनसार में आता है न ? कि संसार मिलता है, वह सफल है। अनादि से जो मिलता है, वह सफल है और धर्म है, वह अफल है। आता है न ? आहाहा ! अनादि से ज्ञानस्वरूप से विरुद्ध भाव का फल सफल है। चार गति सफल है। आहाहा ! और ज्ञानस्वरूपी वस्तु है, उसे भव नहीं है, वह ज्ञानस्वरूप अफल है। उसे अब भव भ्रमण का फल नहीं है। आहाहा !

ऐसा जो ज्ञानस्वभाव, (वह) पुण्य-पापरूपी वन को जलाने के लिये अग्नि है। आहाहा ! एक-एक शब्द में बारह अंग का सार है। करनेयोग्य है और यह करने से इसके भव का अभाव हो, ऐसा है। बाकी इसका कोई उपाय नहीं है। आहाहा ! क्योंकि एक द्रव्य तो दूसरे द्रव्य का कुछ कर नहीं सकता। सँभाल नहीं सकता, तोड़ नहीं सकता, रख नहीं सकता, फोड़ नहीं सकता, सँभाल नहीं सकता। आहाहा ! एक आत्मतत्त्व किसी दूसरे तत्त्व को सँभाल नहीं सकता, तोड़ नहीं सकता। आहाहा ! यह करे तो अज्ञानभाव करे, नहीं तो ज्ञानभाव इसका स्वभाव है। वह तो-अज्ञान तो नया उत्पन्न करता है। पुण्य और पाप मेरे—यह तो अज्ञानभाव है। परन्तु पुण्य और पाप को जलानेवाली अग्नि, यह ज्ञानस्वरूप से सिद्ध, ज्ञानस्वरूपी सिद्ध, अस्तित्व-जिसकी अस्ति ज्ञानस्वभावी है, वह ज्ञानस्वभाव, पुण्य-पापरूपी वन को जलानेवाली अग्नि है। आहाहा ! वन लिया वन। पुण्य-पाप का वन। आहाहा !

अनन्त काल से पुण्य और पाप के अनेक प्रकार सेवन करता आया है। उनमें परिभ्रमण करता आता है, इसलिए उन्हें वन कहा है। पुण्य-पाप का वन, उसे जलानेवाला प्रभु आत्मा ज्ञान है। वह ज्ञानस्वभाव स्वतःसिद्ध है। किसी से निष्पन्न, किसी से प्राप्त, किसी से बना, किसी से रचित नहीं है। आहाहा! ऐसा जो भगवान ज्ञानस्वभाव, (वह) पुण्य-पाप का जो वन विस्तार, अनन्त काल में, चार गतियों में चौरासी का जो विशाल वन पड़ा है, उसको जलानेवाली वह अग्नि है। आहाहा! एक बात।

महामोहांधकारनाशक अति प्रबल तेजमय है,... और कैसा है? महामोह-अन्धकार—राग को अपना मानना, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव-मिथ्यात्व। राग का कण भी अपना है - ऐसा जो मिथ्यात्व महामोहांधकार है; क्योंकि राग स्वयं ही अन्धकार है। मिथ्यात्व भी अन्धकार है। राग मेरा और राग मैं—यह मिथ्यात्वरूपी अन्धकार है। ऐसा महामोहांधकार, ऐसा लिया है न? ऐसे अन्धकार का नाशक... आहाहा! उस मिथ्यात्व का नाशक **अति प्रबल तेजमय है,...** आहाहा! अति-जोरदार तेजमय है। अन्तरस्वरूप भगवान महामोहरूपी अन्धकार को प्रकाशमय चीज से उसे जलाने को तेजमय है, तेजमय है। आहाहा! **अति प्रबल तेजमय है,...** ज्ञानस्वरूपी भगवान की विरुद्ध मान्यतारूप—मैं पर का कुछ करूँ, पर से कुछ लूँ और पर को कुछ मदद करूँ—ऐसा जो महामोहांधकार मिथ्यात्व, उसे (जलाने को) यह ज्ञानस्वभाव तेजमय है, तेजमय है। उसे नाश करने के लिये तेजमय है। आहाहा! थोड़े में बहुत समाहित कर दिया है।

विमुक्ति का मूल है... विशेष मुक्ति अर्थात् पूर्णानन्द की प्राप्ति; मुक्ति अर्थात् परम आनन्द की पर्याय में प्राप्ति। उसका यह मूल है। ज्ञान, वही ज्ञानस्वरूप, त्रिकाली ज्ञानस्वभाव, उस विमुक्ति-विशेष मुक्ति का वह मूल है। आहाहा! उसके आश्रय से मुक्ति होती है। कोई दया, दान और व्रत के परिणाम से मुक्ति नहीं होती। आहाहा! कठिन लगे, लोगों को एकान्त लगे। यद्यपि अब तो लोग विचार में चढ़ गये हैं। नहीं तो एकान्त यह तो क्या? आहाहा!

चैतन्यपुंज प्रभु, ज्ञान का अस्तित्व-सत्ता; वह अनादि का जो महामोहांधकार, राग और पुण्य तथा पर को अपने मानने का जो मिथ्यात्वभाव, ऐसा जो अन्धकार, उसका नाश करने को... आहाहा! अतिप्रबल तेजमय है। अति जोरदार तेजमय है। चैतन्य के तेज, अति प्रबल तेजमय है। आहाहा! करना क्या? यह। आहाहा! अति प्रबल महातेज जो मिथ्यात्व

अन्धकार, उसे नाश करने में यह समर्थ है। देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा या स्वाध्याय या वाँचन या विकल्प, वह कोई नाश करने को समर्थ नहीं है। आहाहा!

विमुक्ति का मूल है... विशेष मुक्ति अर्थात् सम्यग्दर्शन में तो मुक्तस्वरूप है - ऐसा ज्ञात होता है, परन्तु विशेष मुक्ति अर्थात् पूर्ण मुक्ति। आहाहा! पूर्ण शुद्ध आनन्द-ऐसी विमुक्ति, उसका वह ज्ञानस्वरूप तेजमय-जोरदार मूल है। विमुक्ति का तो वह मूल है। आहाहा! क्योंकि वह मुक्तस्वरूप है, निरावरण है। जिसमें कलुषित और कलंक का अभाव है। ऐसा जो ज्ञानस्वभाव, वह विमुक्ति का मूल है। वह पूर्ण मुक्ति का मूल है। पहले साधारण बात की कि मोहान्धकार-मिथ्यात्व का नाश, पुण्य-पाप को जलानेवाली अग्नि - यह पहले बात की। फिर विशेष ले गये कि यह तो **विमुक्ति का मूल है...** आहाहा! इतने से इतना नहीं, परन्तु पूर्ण मुक्ति होती है... आहाहा! उसका यह मूल है।

निरुपाधि=छलरहित; सच्चे; वास्तविक। महा आनन्दसुख का दायक है। आहाहा! दुनिया में कल्पना, ठगाई मानकर सुख मानता है (कि) इसमें सुख है, विषय में सुख है, पैसे में सुख है। आहाहा! पुत्र उत्तराधिकार रखेगा, इसमें सुख है-यह महामोहान्धकार है। आहाहा! इसका नाश करके, **निरुपाधि महा आनन्दसुख का दायक है**। महा आनन्द, महा आनन्द - ऐसा जो सुख; उसका भगवान् चैतन्यस्वरूप दातार है। आहाहा! एक श्लोक में तो कितना कहा! समाधिशतक! यह समाधि है। आहाहा! समाधि.. समाधि.. समाधि.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. आहा..! महा उपाधिरहित, महा आनन्द सुख का दातार है। कौन? ज्ञानस्वरूप सत्ता। जो ज्ञानस्वरूप सत्ता है, वह इस सुख की उत्पन्न करनेवाली है।

भवभव का ध्वंस करने में... आहाहा! भवभव का ध्वंस करने में निपुण ऐसे इस ज्ञान को... आहाहा! ज्ञानस्वरूपी भगवान् भवभव का ध्वंस करने में निपुण ऐसे इस ज्ञान को... इस ज्ञान को-ऐसा लिया है न? अर्थात् प्रत्यक्ष। आहाहा! यह ज्ञान प्रत्यक्ष है, उसे मैं नित्य पूजता हूँ। मेरा आदर त्रिकाली भगवान् आत्मा के प्रति है, उसे मैं पूजता हूँ, उसका मुझे आदर है। बाकी उसके अतिरिक्त मुझे किसी चीज़ का आदर नहीं है। आहाहा! यह धर्मी का लक्षण। किसी का कुछ एक रजकण का भी कर नहीं सकता और स्वयं पूर्ण अपना कर सकता है। आहाहा! स्वयं पूर्ण स्वरूप भरपूर तेज-बल है। वह महामोहान्धकार का भी नाश करने को समर्थ है। पर का—एक रजकण बदलने में समर्थ नहीं। आहाहा!

आँख की पलक फिराने को भी भगवान समर्थ नहीं है, परन्तु अपना महाअन्धकार जो अनादि का मोह अन्धकार... आहाहा! उसे यदि अन्तर्दृष्टि करे तो नाश हो, ऐसी उसमें ताकत है। आहाहा!

भवभव का ध्वंस करने में निपुण... आहाहा! भवभव का नाश करने में आत्मा निपुण है। उसमें वह ज्ञानस्वभाव चतुर है। जगत की चतुराई यहाँ काम नहीं करती। भवभव का... आहाहा! **ध्वंस करने में निपुण...** है। इसका नाम निपुणता है। भवभव का ध्वंस करने में भगवान ज्ञान सत्ता, त्रिकाली स्वभाव एकरूप ध्रुव रहनेवाला, वह भवभव का नाश करने में निपुण ऐसे इस ज्ञान को.. यह सब विशेषण दिये। ऐसे इस आत्मा को। इस अर्थात् यह प्रत्यक्ष जो आत्मा भगवान प्रसिद्ध है, प्रत्यक्ष है, व्यक्त है। आहाहा! वही चीज़ है, वह प्रत्यक्ष है। उसे मैं **नित्य पूजता हूँ**। है? उसे नित्य पूजते हैं। हमेशा समय-समय मेरा झुकाव ही वहाँ है। आहाहा! परमानन्द की मूर्ति प्रभु, अकेला ज्ञानज्योति तेज, उस पर मेरा झुकाव-उन्मुखता है, वह नित्य पूजन है। आहाहा! एक श्लोक (पूरा हुआ)।

श्लोक-२१७

(शिखरिणी)

अयं जीवो जीवत्यघकुलवशात् सन्सृतिवधू-
धवत्वं सम्प्राप्य स्मरजनितसौख्याकुलमतिः ।
क्वचिद् भव्यत्वेन ब्रजति तरसा निर्वृतिसुखं,
तदेकं सन्त्यक्त्वा पुनरपि स सिद्धो न चलति ॥२१७॥

(वीरछन्द)

अघ समूह के वश यह चेतन संसृति-रमणी पति होकर।
कामजनित सुख हेतु जी रहा आकुल मतिवाला होकर ॥

और कभी भव्यत्व भाव से शीघ्र मुक्ति सुख करता प्राप्त ।

उसे छोड़कर चलित न हो वह सिद्ध कभी उसके पश्चात् ॥२१७॥

श्लोकार्थ : यह जीव अघसमूह के वश संसृतिवधू का पतिपना प्राप्त करके (अर्थात् शुभाशुभ कर्मों के वश संसाररूपी स्त्री का पति बनकर) कामजनित सुख के लिये आकुल मतिवाला होकर जी रहा है । कभी भव्यत्व द्वारा शीघ्र मुक्तिसुख को प्राप्त करता है, उसके पश्चात् फिर उस एक को छोड़कर वह सिद्ध चलित नहीं होता (अर्थात् एक मुक्तिसुख ही ऐसा अनन्य, अनुपम तथा परिपूर्ण है कि उसे प्राप्त करके उसमें आत्मा सदाकाल तृप्त-तृप्त रहता है, उसमें से कभी च्युत होकर अन्य सुख प्राप्त करने के लिये आकुल नहीं होता) ॥२१७॥

श्लोक- २१७ पर प्रवचन

२१७ (श्लोक ।)

अयं जीवो जीवत्यघकुलवशात् सन्सृतिवधू-

धवत्वं सम्प्राप्य स्मरजनितसौख्याकुलमतिः ।

क्वचिद् भव्यत्वेन व्रजति तरसा निर्वृत्तिसुखं,

तदेकं सन्त्यक्त्वा पुनरपि स सिद्धो न चलति ॥२१७॥

आहाहा ! ऐसी बात सुनने को मिलती नहीं । यह करो.. यह करो.. यह करो.. इसमें कुछ आत्मा को जरा भी लाभ नहीं मिलता । किसी की आलोचना नहीं है, वह प्रभु है । उल्टी दशा करेगा तो उसे दुःख होगा । जैसा स्वरूप है, उससे दूसरे प्रकार से मानेगा तो उस जीव को दुःख होगा । किसी जीव को दुःख हो, यह इच्छनेयोग्य है ? आहाहा ! सभी जीव सुखी होओ । आत्मा में जाकर आठ कर्मों का नाश करो और प्रभु होओ । आहाहा ! सभी आत्मायें भगवान होओ । आहाहा ! यह अपना जोर बताते हैं । मैं भगवान होनेवाला हूँ, तो फिर तुम आत्मा हो न ? मैं आत्मा हूँ तो भगवान होनेवाला हूँ, तो तुम भी आत्मा हो न, प्रभु ! तुम आठ कर्मों का नाश करके भगवान होओ । कोई वैर-विरोध या शत्रु जगत में है नहीं । सब परमात्मा है । आहाहा ! मत-मतान्तर के कारण सब भेद पड़ गये, परन्तु वस्तु तो अन्दर भगवान परिपूर्ण है । उसमें कोई मत-मतान्तर लागू नहीं पड़ता । आहाहा !

वस्तुस्वरूप जो है, उसमें कोई कम, अधिक, विपरीत नहीं कर सकता। कल्पना में, पर्याय की कल्पना में ऐसा करे, आहाहा! परन्तु इस तेज का बल ऐसा है, कहते हैं.. आहाहा! भव-भव का नाश करनेवाला। महामोह—ऐसा कहने से मिथ्यात्व कहते हैं। आहाहा! जो मिथ्यात्व का जोर अनादि से है.. आहाहा! उसका भी नाश करने में समर्थ है। ऐसा नहीं कि अनादि का है, इसलिए... इससे शब्द आया न? महामोह... जीवों को... आहाहा! यहाँ इस ओर। **महामोहांधकारनाशक अति प्रबल तेजमय है,...** अनादि से भले उसका बल चला। आहाहा! स्वयं कहेंगे। अन्तिम श्लोक में कहते हैं न? एक में कहीं कहते हैं। कर्म ने हैरान किया है। आहाहा! अन्तिम श्लोक है। अरेरे! मैं ऐसा आत्मा! कर्म से मारा गया हूँ। मारा गया हूँ अर्थात् मैंने मेरा लक्ष्य पर के ऊपर करके मेरी चीज़ को मैंने देखा नहीं, माना नहीं, जाना नहीं, माहात्म्य आया नहीं। अन्तिम श्लोक है न कहीं?

मुमुक्षु : पृष्ठ २४६

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आ गया है। २४६? यह आ गया है। अहो! २४६ पृष्ठ। **अहो! मेरे हृदय में स्फुरायमान इस निज आत्मगुण सम्पदा को...** मेरे हृदय में विराजमान यह निज आत्मगुणसम्पदा—**कि जो समाधि का विषय है...** आहाहा! बाद मैं समाधि (अधिकार) लेना है न? इसलिए उसका उपोद्घात करते हैं। जो आनन्द का विषय है। शान्ति... शान्ति... शान्ति का विषय है। वह विकार का, भव का विषय आत्मा नहीं है। आहाहा! **उसे मैंने पूर्व में एक क्षण भी जाना नहीं है।** आहाहा! उस समाधि का विषय, **उसे मैंने पूर्व में एक क्षण भी जाना नहीं है।** वास्तव में, तीन लोक के वैभव के प्रलय के हेतुभूत... आहाहा! ज्ञान किया। तीन लोक के वैभव के प्रलय अर्थात् नाश के हेतुभूत **दुष्कर्मों की प्रभुत्वगुण शक्ति से...** आहाहा! यहाँ महामोहांधकार कहा है न? आहाहा!

प्रभुत्वशक्ति से अरेरे! मैं संसार में मारा गया हूँ। आहाहा! मैंने मेरी चीज़ को देखे बिना, मेरी चीज़ की संभाल किये बिना, अरे रे! कर्म के कारण मेरे लक्ष्य में, उसमें मैं मारा गया हूँ। आहाहा! कर्म को लक्ष्य में लिया, भगवान को लक्ष्य में से छोड़ दिया। आहाहा! इसलिए मैं मारा गया हूँ। आहाहा! और इसका अर्थ यह कि मैं अब मरनेवाला नहीं हूँ। अब ऐसा तेजबल मेरे चैतन्य में आया है। अब उस (मोह) अन्धकार का नाश करके मैं जागृत हुआ हूँ। आहाहा! वह प्रायश्चित्त अधिकार है न?

(कलश) २१७। श्लोकार्थ : यह जीव अघसमूह के वश... पाप और पुण्य के समूह के वश से। आहाहा! भगवान अनन्त चमत्कारी चीज़ है, जो एक काल, एक समय और तीन काल को जाने, उसकी सत्ता में अनन्त गुण की अनन्त पर्याय। उसमें एक ही पर्याय में ऐसा जाने। ऐसा चमत्कारी प्रभु... आहाहा! अघसमूह के वश... पाप और पुण्य के समूह के वश से। उनके आधीन होता हुआ, ऐसा होने पर भी। आहाहा! यहाँ कर्म के वश नहीं कहा। अघसमूह के वश से। अपने पुण्य और पाप के विकारी भाव के वश से संसृतिवधू का पतिपना प्राप्त करके... संसाररूपी दशा का पतिपना पाकर। उसका स्वामी हुआ। आहाहा! विकारीदशा। तीन लोक का नाथ भगवान, जिसमें विकार की गन्ध नहीं। उसे भूलकर, अरे रे! मैं विकृति अवस्था का स्वामी हुआ—विकृति अवस्था का पति हुआ। आहाहा!

प्राप्त करके (अर्थात् शुभाशुभ कर्मों के वश संसाररूपी स्त्री का पति बनकर)... आहाहा! शुभ और अशुभ जो भाव, उनके स्वामीपने उनके वश होकर। भगवान शुभाशुभभावरहित प्रभु आनन्द का नाथ है, उसे भूलकर कामजनित सुख के लिये आकुल मतिवाला होकर... आहाहा! पाँचों ही इन्द्रियों के विषयों में कामजनित। काम से-इच्छा से उत्पन्न होते ऐसे सुख के लिये आकुल मतिवाला होकर... आहाहा! जो निराकुल प्रभु, वह आकुलता में आकुलता जनित होकर। कामजनित में आकुल होकर, आहाहा! जी रहा है।

कामजनित सुख के लिये आकुल मतिवाला होकर जी रहा है। आहाहा! अनादि संसार में इस प्रकार से जीता है। आहाहा! स्वयं निष्काम चीज़ है, उसे छोड़कर परपदार्थ की इच्छा जो काम-भोग आदि, पाँचों ही इन्द्रियों के विषय की कामना के वश से स्त्री का पति बनकर, उस विकार की दशा का पति बनकर। आहाहा! (संसाररूपी स्त्री का पति बनकर) आहाहा! ऐसा बनकर जीता है, कहते हैं। आहाहा! ठगों की टोली में जीता है। स्वयं अन्दर भगवान है, उसके सन्मुख नहीं देखता। आहाहा! समय नहीं मिलता। अभी नहीं, बाद में बात, बाद में बात। आहाहा! देह के छूटने का काल क्षण में आकर खड़ा रहेगा। बाद में बाद रह जाएगा। बाद में तो बाद रह जाएगा। आहाहा!

आकुल मतिवाला होकर जी रहा है। आहाहा! अज्ञानी का जीवन अनादि का

कैसा है ?—कि कामजनित आकुलतावाली मति से जीता है। बाहर की कोई भी इच्छा यह.. यह.. यह.. स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, पैसा, लक्ष्मी, कीर्ति की कामना से जीता है, उसका पति-स्वामी होकर जीता है। वे सब मेरे हैं। आहाहा! जो इसके स्वप्न में भी इसके नहीं। आहाहा! बाहर में तो नहीं, परन्तु स्वप्न में भी इसके नहीं। उन्हें अपना मानकर... आहाहा! कामजनित सुख के लिये आकुल मतिवाला होकर... आहाहा! ऐसा करूँ, इससे मिलेगा, इससे मिलेगा, इससे मिलेगा। बाहर से सुख (मिलेगा)... आहाहा! इस प्रकार अनादि से जीता है।

कभी भव्यत्व द्वारा शीघ्र मुक्तिसुख को प्राप्त करता है,... वह का वह अपने आत्मा के स्वभाव की सँभाल करके, भव्यत्व की योग्यता से, अपने स्वभाव की योग्यता की कीमत करके, उस भव्यता को प्राप्त करके... आहाहा! शीघ्र मुक्तिसुख को... यहाँ लिया शीघ्र मुक्तिसुख को। उसमें तो उसका पति होकर रहता था। कब ? कि भव्यत्व द्वारा अपनी योग्यता और लायकात द्वारा, आनन्द और ज्ञान की जिसकी लायकता है। आहाहा! उसकी प्रभुता की योग्यता के कारण शीघ्र-अल्प काल में मुक्तिसुख को प्राप्त करता है,... या इसी भव में या दूसरे भव में, परन्तु मुक्ति प्राप्त करता है। ऐसी सामर्थ्यवाला है। आहाहा! बाहर की कामजनित आकुलता के सुख को प्राप्त करके उसका स्वामी होता है। परन्तु कहते हैं कि एक बार यह देख तो भव्यत्वपने को प्राप्त करके तुझे शीघ्र-अल्प काल में केवलज्ञान होगा। अल्प काल में। केवलज्ञानस्वरूप है, केवलज्ञानस्वरूप है। केवलज्ञानस्वरूप है ही। वह शीघ्र भव्यता के कारण प्राप्त कर सकेगा। आहाहा!

उसके पश्चात् फिर... मुक्त हुआ, इसलिए अब फिर उस एक को छोड़कर... आहाहा! मुक्ति के सुख को-एक को छोड़कर, आनन्द के सुख को-आत्मा के सुख को एक को छोड़कर वह सिद्ध चलित नहीं होता... वे सिद्ध वहाँ से हटते नहीं हैं। उन्हें फिर से अवतार धारण नहीं करना पड़ता। आहाहा! कितने ही कहते हैं न कि सिद्ध होते हैं, परन्तु फिर वापस आते हैं। यहाँ जीव घट जाए, जीव घट जाए, फिर वापस आते हैं। सिद्ध में से वापस आते हैं। आहाहा! यह एक। भाषा देखी! एक को छोड़कर... एक स्वरूप भगवान् चिदानन्द एक को छोड़कर वह सिद्ध चलित नहीं होता... सिद्ध भगवान् चलित नहीं होते, अवतार धारण नहीं करते। आहाहा!

(अर्थात् एक मुक्तिसुख ही ऐसा अनन्य,...) मुक्ति का सुख अनन्य। अन्य नहीं - ऐसा। अनुपम... उपमा नहीं - ऐसा तथा परिपूर्ण है... आहाहा! मुक्ति का सुख कैसा है? अनन्य है। अन्य-अन्य नहीं। अनन्य है। वह का वही एकरूप रहनेवाला है। आहा! अनुपम-जिसकी उपमा नहीं। और जो परिपूर्ण है। आहाहा! कि उसे प्राप्त करके... ऐसा जो परिपूर्ण है कि उसे प्राप्त करके उसमें आत्मा सदाकाल तृप्त-तृप्त रहता है,... आहाहा! सबमें से निकलकर एक आत्मा में ही सदाकाल—सादि-अनन्त तृप्त-तृप्त रहते हैं। आहाहा! उसमें से कभी च्युत होकर अन्य सुख प्राप्त करने के लिये आकुल नहीं होता। आहाहा! सिद्ध के सुख को प्राप्त होकर, पश्चात् किसी दूसरे के सुख के कारण दुनिया में वैर रखोगे तो बढ़ जाए तो जन्म लेना पड़े, ऐसा सिद्ध को नहीं है। आहाहा!

कभी च्युत होकर अन्य सुख प्राप्त करने के लिये आकुल नहीं होता। आहाहा! अनाकुल आनन्द सुख को प्राप्त कर, वह तो वापस शीघ्र प्राप्त कर, उसे लम्बा काल नहीं होता। संसार है, वह तो अनादि-सान्त है और मोक्ष है, वह तो एक क्षण में प्राप्त होता है; पश्चात् सादि-अनन्त रहता है। भूतकाल की अपेक्षा अनन्त गुना रहता है और वह भी शीघ्र प्राप्त करके... आहाहा! अपनी जाति को जानने पर, अपनी जाति को पहिचानने पर शीघ्र पूर्ण सुख को प्राप्त करता है। आहाहा! वह सुख कहीं से लेने नहीं जाना है। अन्यत्र कहीं सुख है ही नहीं। आत्मा के अतिरिक्त कहीं सुख मानना, वह मिथ्याभ्रमणा है। आहाहा!

मृग की नाभि में कस्तूरी, उसकी गन्ध बाहर में खोजने जाता है। वह कहाँ मिले? इसी प्रकार यह अन्दर में सुख, आनन्द है। यह बाहर में—स्त्री में, पुरुष में, पैसे में, इज्जत में, कीर्ति में खोजने जाता है। आहाहा! कहीं है नहीं; सर्वत्र दुःख है। यह एकरूप सुख, वह सुख है। एकरूप सुख मिटकर दूसरी आकुलता जरा भी नहीं होती। आहाहा! थोड़े में भी बहुत समाहित कर दिया है।

गाथा १३१-१३२

जो दु हस्सं रई सोगं अरतिं वज्जेदि णिच्चसो ।
 तस्स सामाङ्गं ठाड़ इदि केवलि-सासणे ॥१३१॥
 जो दुगंछा भयं वेदं सव्वं वज्जेदि णिच्चसो ।
 तस्स सामाङ्गं ठाड़ इदि केवलि-सासणे ॥१३२॥

यस्तु हास्यं रतिं शोकं अरतिं वर्जयति नित्यशः ।
 तस्य सामायिकं स्थायि इति केवलि-शासने ॥१३१॥
 यः जुगुप्सां भयं वेदं सर्वं वर्जयति नित्यशः ।
 तस्य सामायिकं स्थायि इति केवलि-शासने ॥१३२॥

नवनोकषायविजयेन समासादितसामायिकचारित्रस्वरूपाख्यानमेतत् । मोहनीयकर्मसमुप-
 जनितस्त्रीपुत्रपुन्सकवेदहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्साभिधाननवनोकषायकलितकलङ्कपङ्का-
 त्मकसमस्तविकारजालकं परमसमाधिबलेन यस्तु निश्चयरत्नत्रयात्मकपरमतपोधनः सन्त्यजति,
 तस्य खलु केवलिभट्टारकशासनसिद्धपरमसामायिकाभिधानव्रतं शाश्वतरूपमनेन सूत्रद्वयेन कथितं
 भवतीति ।

जो-नित्य वर्जे हास्य, अरु रति, अरति, शोकविरत रहे ।
 स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे ॥१३१॥
 जो नित्य वर्जे भय जुगुप्सा सर्व वेद समूह रे ।
 स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे ॥१३२॥

अन्वयार्थ : [यः तु] जो [हास्यं] हास्य, [रतिं] रति, [शोकं] शोक और
 [अरतिं] अरति को [नित्यशः] नित्य [वर्जयति] वर्जता है, [तस्य] उसे [सामायिकं]
 सामायिक [स्थायि] स्थायी है [इति केवलिशासने] ऐसा केवली के शासन में
 कहा है ।

[यः] जो [जुगुप्सां] जुगुप्सा, [भयं] भय और [सर्व वेदं] सर्व वेद को [नित्यशः] नित्य [वर्जयति] वर्जता है, [तस्य] उसे [सामायिकं] सामायिक [स्थायि] स्थायी है [इति केवलिशासने] ऐसा केवली के शासन में कहा है।

टीका : यह नौ नोकषाय की विजय द्वारा प्राप्त होनेवाले सामायिकचारित्र के स्वरूप का कथन है।

मोहनीयकर्मजनित स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा नाम के नौ नोकषाय से होनेवाले कलंकपंकस्वरूप (मल-कीचड़स्वरूप) समस्त विकारसमूह को परम समाधि के बल से जो निश्चयरत्नत्रयात्मक परम तपोधन छोड़ता है, उसे वास्तव में केवली भट्टारक के शासन से सिद्ध हुआ परम सामायिक नाम का व्रत शाश्वतरूप है, ऐसा इन दो सूत्रों से कहा है।

गाथा - १३१-१३२ पर प्रवचन

गाथा ।

जो दु हस्सं रई सोगं अरतिं वज्जेदि णिच्चसो ।

तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे ॥१३१॥

जो दुगंछा भयं वेदं सव्वं वज्जेदि णिच्चसो ।

तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे ॥१३२॥

आहाहा! केवलीशासन में होती है, अन्यत्र होती नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जो-नित्य वर्जे हास्य, अरु रति, अरति, शोकविरत रहे।

स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे ॥१३१॥

जो नित्य वर्जे भय जुगुप्सा सर्व वेद समूह रे।

स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे ॥१३२॥

आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्यदेव स्वयं कहते हैं कि मैं कहता हूँ—ऐसा भी नहीं। आहाहा! केवली के शासन में केवली भगवान ने ऐसा कहा है। आहाहा! केवलीशासन में ऐसी सामायिक कही है। हम कहते हैं, ऐसा नहीं, भगवान ने कहा है। भगवान के मार्ग

में यह मार्ग है। आहाहा! ऐसी सामायिक केवलीशासन में होती है। ऐसी सामायिक अन्यत्र नहीं होती। आहाहा!

टीका : यह नौ नोकषाय की विजय द्वारा... नौ है न? हास्य, रति, अरति आदि। ये नौ नोकषाय है। इन नौ नोकषाय की विजय द्वारा प्राप्त होनेवाले... इन्हें विजय करके प्राप्त होनेवाले सामायिकचारित्र के स्वरूप का कथन है। इस हास्य को, रति को, अरति को, जुगुप्सा को, भय को, वेद को जीतकर आत्मा के सुख की विजय प्राप्त की है। **नोकषाय की विजय द्वारा...** आहाहा! ऐसी इसमें ताकत है। नोकषाय तो उत्पन्न हुई पर्याय में क्षणिक विकृत संसार है और वस्तुस्वरूप तो त्रिकाल विजयस्वरूप है। आहाहा! पर के ऊपर विजय प्राप्त करे, ऐसा प्रत्यक्ष स्वभाव है। उसके विरुद्ध से इसे कोई जीत सके - ऐसा यह नहीं है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा... **सामायिकचारित्र के स्वरूप का कथन है।**

नोकषाय की विजय द्वारा प्राप्त होनेवाले... आहाहा! विषय की वासना, रति-अरति, हास्य-दाँत निकालना, प्रसन्न होना - इन सबको छोड़कर सामायिक की प्राप्ति हो, वहाँ नौ नोकषाय की विजय प्राप्त होती है। आहाहा! हास्य भी परिग्रह है न? पाप है न? आहाहा! दुनिया की चीज़ को देखकर, दुनिया की चीज़ को देखकर हर्ष करना, वह पाप है। आहाहा! हास्य करना, रति करना, अरति करना, प्रतिकूलता में खेद करना, अनुकूलता में रति-प्रसन्न होना। आहाहा! विषय की वासना, स्त्री या पुरुष या नपुंसक की। तीनों वासना दुःखरूप है। इन पर विजय करके प्राप्त होनेवाली सामायिक, इन्हें जीतकर प्राप्त होनेवाली सामायिक। आहाहा!

यहाँ तो सामायिक का रूप ऐसा कर डाला। वस्त्र बिछाकर चाहे जो कर डाले। हो गयी सामायिक, लो! दो घड़ी हो गयी। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि एक समय की सामायिक भव का अन्त लावे। समता की आय-लाभ। समतास्वरूप भगवान, वीतरागस्वरूप का लाभ होने पर, उसके सन्मुख होकर पर्याय में शान्ति आने पर, उसका नाम सामायिक है। वह भव के अन्त का कारण है। आहाहा! यह बाहर की समझे बिना का बाहर का क्रियाकाण्ड करे, वह संसार है। वह संसार का पति है। आहाहा! उसका वह स्वामी होता है। आहाहा! स्वामीपने की चीज़ है, उसका स्वामी नहीं होता और जिसका स्वामी नहीं है,

क्षणिक विकृत उत्पन्न हो, उसका स्वामी होकर भटकता है। आहाहा! उसे जीतकर... आहाहा! सामायिकचारित्र के स्वरूप का कथन है।

मोहनीयकर्मजनित स्त्रीवेद,... मोहनीयकर्म से उत्पन्न हुआ स्त्री का वेद, पुरुषवेद,... आहाहा! नपुंसकवेद,... पावैया, हीजड़ा। उसे जो अन्दर विकार की वृत्ति होती है। आहाहा! हास्य,... नवीनता देखकर हास्य होता है। जगत में कुछ नवीनता है नहीं। जो है, उस प्रमाण व्यवस्थित द्रव्य-गुण और पर्याय से सभी द्रव्य विराजमान हैं। जो द्रव्य है, वे अपनी-अपनी पर्यायसहित विराजमान हैं। नवीन कुछ है नहीं। परन्तु नवीन देखकर हास्य करता है, वह पाप है। आहाहा! रति,... अनुकूल देखकर प्रसन्न होना। प्रसन्नता में आ जाना। आहाहा! अनुकूल देखकर प्रसन्नता में प्रसन्न होना, वह पाप है।

अरति,... प्रतिकूल देखकर दुःख में अप्रसन्न होना। प्रतिकूलता में अरुचि होना... आहाहा! वह अरति है, वह सब विकार है। आहाहा! शोक,... छोटा बालक आदि मर गया हो, पुत्र मर जाए, उसका शोक होना। भय... अपनी कमजोरी देखकर, दूसरे की चीज़ की महिमा देखकर भय होना। आहाहा! किसका भय? और जुगुप्सा... ग्लानि। कोई भी चीज़ देखकर ग्लानि। सड़ी हुई चीज़, विष्ठा, सड़ा हुआ सूकर मर गया हो, मर गयी बिल्ली, मर गया चूहा, उसे देखकर ग्लानि करना, वह पाप है। आहाहा! आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, वह जानता है। पर को जानता है, यह अभी व्यवहार है। उसके बदले जानने उपरान्त ग्लानि और रति, अरति उत्पन्न करना, वह जहर है। आहाहा! वह दुःख है।

मुमुक्षु : पापभाव में ग्लानि आवे तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्लानि आवे, वह राग है। उतना विकल्प है न? पाप पर लक्ष्य ही है, वह दुःख है। लक्ष्य बदल डालकर ऐसे भगवान पर लक्ष्य करना, किसी चीज़ पर ग्लानि नहीं, रति नहीं, अरति नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : अन्दर में जाए तो ही उसे हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अन्तर में उतरे, तब यह... यहाँ तो पर्यायबुद्धि छोड़कर। संक्षिप्त भाषा तो यह है। पर्यायबुद्धि छोड़कर द्रव्यबुद्धि में जाए, तब टाल सकता है। संक्षिप्त यह है। विस्तार करें तो फिर बहुत अधिक विस्तार होता है, परन्तु सबका संक्षिप्त में सार

यह है। आहाहा! पर्याय की वर्तमान बुद्धि बाहर में जाती है। आहाहा! इससे ठीक और अठीक—ऐसी कल्पना उठाता है। ज्ञेय हैं, उसमें दो भाग नहीं है। ज्ञेय में ये अरिहन्त ज्ञेय ठीक है; शत्रु ठीक नहीं—ऐसा ज्ञेय में नहीं है। है ज्ञेय में? आहाहा! एक ओर भगवान ज्ञान है तथा एक ओर ज्ञेय है। जानने का—जानने का है। जानने में दो भाग करे कि यह ठीक है और (यह) अठीक है, यह मिथ्यात्व है। आहाहा! ऐसा मार्ग, लो!

मुमुक्षु : सुनकर निश्चित तो करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, निश्चय तो करे। विचार करे। पहले सुने, निर्णय करे, विचार करे कि इस प्रमाण ही करनेयोग्य है। उसे वीर्य में इतना बन्दोवस्तु कर दे कि करनेयोग्य यही है और... वीर्य में, ज्ञान में, ध्यान में ऐसा लिया जाए कि यह चीज करनेयोग्य है और यह चीज करनेयोग्य नहीं है। ऐसा ध्यान में तो ले, ज्ञान में तो ले—ऐसा कहते हैं। आहाहा! पश्चात् उस दशा को बदले। पर के ऊपर का लक्ष्य बदलकर स्व के ऊपर ला। आहाहा! ऐसी बात है। बाहर की किसी क्रिया-प्रवृत्ति से वह बने - ऐसा नहीं है, क्योंकि बाहर की क्रिया - प्रवृत्ति उसमें है ही नहीं। शरीर, वाणी, मन बैठ जाए, इसलिए वहाँ स्थिर होता है - ऐसा नहीं है। वह तो सब परचीज है। शरीर और वाणी ऐसे बैठ जाए, इसलिए वहाँ स्थिरता होती है - ऐसा नहीं है। आहाहा! जो परचीज है, उसे स्पर्श नहीं करता। उसके अस्तित्व में, उसके अंश में पर्याय भी नहीं है। द्रव्य-गुण में तो नहीं, परन्तु उसकी विकृत अवस्था भले हो, विकृत अवस्था में कहीं परचीज की अस्तित्व नहीं है। विकृत अवस्था हो। आहाहा! परद्रव्य का अस्तित्व इसकी विकृत अवस्था में भी नहीं है। आहाहा! इसलिए उस विकृत अवस्था को छोड़कर ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा में जा। वहाँ तुझे शान्ति प्राप्त होगी, वहाँ तुझे आनन्द प्राप्त होगा, क्योंकि वह आनन्द का सागर है। वह ज्ञान का महासमुद्र है। आहाहा! वह अनन्त गुण के प्रभु से भरपूर, अनन्त गुण के प्रभुत्व से भरपूर प्रभु है। आहाहा! उसके एक-एक गुण में अनन्त प्रभुता भरी है। उसके सन्मुख देखने पर यह पामर प्राणी, यह विकारी (भाव) तो कहीं चले जाते हैं, कहते हैं। ऐसा उसमें जोर है। माने उसको।

मुमुक्षु :स्वीकार करे, उसकी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वीकार न करे तो उसे है नहीं। कारणपरमात्मा तो भगवान है,

परन्तु उस कारणपरमात्मा का स्वीकार करे, उसे है। स्वीकार करता है राग को और कारणपरमात्मा है - ऐसा कहे, यह बात एकदम झूठ है। आहाहा! त्रिकाली भगवान ज्ञानस्वरूपी, कारणप्रभु का स्वीकार करनेवाला, और राग का भी स्वीकार करे कि राग मेरा और यह मैं, ऐसा नहीं हो सकता। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, एक मुक्तिसुख ही ऐसा अनन्य, अनुपम तथा परिपूर्ण है कि उसे प्राप्त करके उसमें... यह आ गया न? यह नहीं, यहाँ है। मोहनीयकर्मजनित स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा नाम के नौ नोकषाय से होनेवाले कलंकपंकस्वरूप... है। आहाहा! यह नोकषाय है, वह कलंकपंकस्वरूप है। स्वरूप में है नहीं। वे तो कादव है। आहाहा! पंक कहा न? कलंक और पंक। वह कलंक कादवस्वरूप है। आहाहा! भगवान अमृत का सागर अन्दर है। (मल-कीचड़स्वरूप)... है। आहाहा! नोकषाय है, वे मल कादवस्वरूप है।

समस्त विकारसमूह को परम समाधि के बल से... आहाहा! समस्त विकार के ढेर-समूह को परम समाधि के बल से... आहा..! ऐसे तो प्रतिक्रमण, सामायिक, लोगस करते हैं, उसमें बोलते हैं 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु' परन्तु समाधि किसे कहना? वर किसे कहना और दिंतु किसे कहना? आहाहा! ऐसा तो आचार्य भगवान भी कहते हैं कि हे भगवान! मुझे बोधि दो। परन्तु वे तो समझकर माँगते हैं। है, उसे माँगते हैं। है, उसे परिपूर्ण माँगते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य अष्टपाहुड़ में कहते हैं। समाधि दो। प्रभु! आप देव हो न! तो हमें समाधि दो। वे समझकर कहते हैं। समझ हुई है, अनुभव हुआ है। अब पूर्ण प्राप्ति के लिये प्रार्थना है। आहाहा! इससे माँगते हैं, इसलिए किसी से मिलती है (-ऐसा नहीं है)। कुन्दकुन्दाचार्य जैसे माँगते हैं। एक ओर कहे किसी से नहीं मिलता। एक ओर स्वयं कहे- कि भगवान! आप देव हो। देव हो, इसलिए 'ददापि, वह देव', आप मुझे कुछ दो। हमें कुछ सुख दो, मुक्ति दो। आहाहा! यह लोगस्स में भी ऐसा आया न? 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु' आहाहा! कौन दे? भाई! तू किसमें है? किसमें तू है, वह इससे तुझे प्राप्ति होगी? जिसमें जो तेरा स्वरूप है, उससे प्राप्ति होती है। पर में तू नहीं है कि जिससे पर से प्राप्ति हो। आहाहा!

पुण्य और पाप के भाव भी पर हैं। उनमें आत्मा नहीं है। उस पर में से आत्मा कहाँ

से प्राप्त होगा ? आहाहा ! यह तो विरोध है । आहाहा ! इसे पुण्य करते-करते होगा । व्यवहाररत्नत्रय लोगों को गले लगा है । और आगे यहाँ कहते हैं - व्यवहाररत्नत्रय कथनमात्र (है), अनन्त बार किया है । यह पहले आ गया है । व्यवहार कथनमात्र देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि अनन्त बार किया है । तथापि वहाँ से मरकर कोई क्षेत्र बाकी नहीं रखा कि जहाँ वापस जन्मा और मरा न हो । आहाहा ! ऐसी स्थिति पाकर भी समझा नहीं था; इसलिए अनन्त भव... प्रत्येक क्षेत्र में एक कण पर भी अनन्त भव और जन्म-मरण किये हैं । आहाहा ! कोई कण बाकी-खाली नहीं है । ऐसे लम्बे विचार कौन करे ? निवृत्ति नहीं मिलती । आहाहा ! भटकने के भाव में उत्साह और हर्ष । आहाहा !

यहाँ कहते हैं, ऐसा जो कलंकपंकस्वरूप (मल-कीचड़स्वरूप) समस्त विकारसमूह को परम समाधि के बल से... आहाहा ! परम समाधि शान्ति... शान्ति... शान्ति... जो निश्चयरत्नत्रयात्मक परम तपोधन... यह लिया । जो निश्चयरत्नत्रयस्वरूप मुनि । जिन्हें निश्चयसम्यग्दर्शन, निश्चयसम्यग्ज्ञान, निश्चयसम्यक्चारित्र - ऐसे निश्चयरत्नत्रयात्मक, निश्चयरत्नत्रयस्वरूप परम तपोधन (मुनि) छोड़ता है,... आहाहा ! इन हास्यादि को तजते हैं और स्वरूप में स्थिर होते हैं । आहाहा ! उसे वास्तव में केवली भट्टारक के शासन से सिद्ध हुआ... आहाहा ! वे भट्टारक है, वे नहीं, हों ! केवली भट्टारक के शासन से सिद्ध हुआ परम सामायिक नाम का व्रत शाश्वतरूप है... आहाहा ! है तो पर्याय, परन्तु शाश्वतरूप है । ऐसा इन दो सूत्रों से कहा है । लो !

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)